छायावादोत्तर कविता लोककाव्य का एक अनुशीलन

डॉ. आर.पी. वर्मा,
एसो. प्रो. एवं अध्यक्ष हिन्दी विभाग,
राजकीय महाविद्यालय गोसाईखेड़ा,
जनपद–उन्नाव, उ.प्र.

हमारा शिष्ट साहित्य सदा से ही लोक–साहित्य का ऋणी रह है। यदि साहित्य को मनवमन की सूक्ष्मतम अनुभूतियों का इन्द्रधनुषी प्रतिबिम्ब कहें तो उसमें परिव्याप्त लोकतत्व को उसकी सूक्ष्मतम सतरंगिनी आभा का मूल कहा जा सकता है। साहित्य में लोकतत्व की यह परिव्याप्ति इतनी अंतंरगिणी और सूक्ष्म है कि उसमें सतत् विद्यमान रहने पर भी वह अप्रतीत बनी रहती है। साहित्य का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब कभी भी साहित्यकार की सर्जनात्मक प्रवृत्ति ने अपनी रचना के लिये मौलिक आधारों का अभाव महसूस किया था, विषय उसे रसहीन अथवा भावहीन प्रतीत होने लगे तो उसने अपनी लोक–चेतना की शरण ली और वहां से एक नवीन प्रेरणा ग्रहण की।

यहाँ लोक शब्द से हमारा तात्पर्य 'ग्राम्य' या 'जनपद' मात्र न होकर मानव समाज का वह समस्त वर्ग या समुदाय है जो पाण्डित्य, शास्त्रीयता तथा ज्ञान के अहंकार से शून्य, अपने जीवन के इर्द–गिर्द छाये तमाम विश्वासों, प्रथाओं रीति–रिवाजों के प्रति आस्थावान् बना आज भी जीवित है। यहाँ ग्राम और पुर का भेद नहीं। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी के शब्दों में 'शब्द का अर्थ जनपद या ग्राम्य नहीं, बल्कि नगरों एवं गाँवों में फैली हुई समूची जनता है जिनमें व्यवहारिक ज्ञान का आधार पोथियाँ नहीं है।' इसी जनता का साहित्य लोक–साहित्य है।

कभी–कभी लोक शब्द हमें भ्रम में डाल देता है। लोक का अर्थ हम ग्राम या ग्राम्य लगा लेते हैं लेकिन लोकतत्व को ग्रामीण अनुभूतियों तक सीमित करना ठीक नहीं भारत गांवो का देश है। यहां की जनता का एक बहुत बड़ा हिस्सा गाँवों में रहता है। आज के सभ्य तथा सुशिक्षित का है जाने वाले युग में जबकि नगर अपनी परम्परा संस्कृति आदि से कटते जा रहे हैं, ये गाँव अभी भी अपनी संस्कृति, अपनी परम्परा, अपने आचार–विचार, रीति–रिवाजों को किसी–न–किसी रूप में संजोए हैं। शायद इसी कारण कभी–कभी लोक शब्द में ग्राम्य अर्थ ध्वनित होने लगता है। जैसे प्रसिद्ध कवि रामनरेश त्रिपाठी ने जहां भी ग्राम गीत या ग्राम साहित्य जैसे शब्दों का प्रयोग किया है, उनका अभिप्राय इसी लोक शब्द से है। लोक–साहित्य को ग्राम्य–जीवन की वस्तु मान उसे शिष्ट साहित्य की कोटि से अलग रखने के मूल में भी शायद यही कारण है। लेकिन ऐसा करना लोक शब्द ही विशालता को संकुचित करना है। ग्राम में लोक की विशाल भावना नहीं आ पाती।

गाँवों में, वहाँ की लोक–कथाओं में, रहन–सहन, रीति–रिवाजों, परम्पराओं में लोकतत्व पूरी तरह सुरक्षित है। किसी भी देश के काव्य का उद्भव वहाँ की दन्त कथाओं या ग्रामगीतों से होता है। 'ग्रामगीत संभवतः वह आशुकवित्त हैं जो कर्म अथवा क्रीडा की ताल पर रचा गया है।' ये हृदय की वाणी हैं मस्तिष्क की ध्वनि नहीं।

शिष्ट कहे जाने वाले समुदाय की बंधी–बंधायी साहित्यिक धारा के साथ–साथ सामान्य अनपढ़ जनता के बीच भी एक स्वच्छन्द

और प्राकृतिक भावधारा गीतों के रूप में प्रवाहित होती रहती है जो समय–समय पर शिष्टों के काव्य को गति और प्रेरणा देती है। आज भी शिष्ट साहित्य के जो कलाकार जन–जीवन से घुल–मिल रहे हैं उनका साहित्य जनता का साहित्य बन गया है और वे लोकप्रियता की पराकाष्ठा पर पहुंचे हैं। क्योंकि लोकगीत या लोककाव्य व्यक्तिगत उच्छवास और वेदना की अभिव्यक्ति लिये हुए सामाजिकता से अनुप्राणित होते हैं। उन गीतों में हमारी स्वस्थ सरल संस्कृति सुरक्षित होती है। जहाँ तक इन गीतों में राग–रागिनियों और धनों का प्रश्न है। इनमें ऐसी–ऐसी धुनें और राग–रागिनियें की योजना होती है कि उनकी संवेद्यता या मधुरता के समक्ष शायद ही कोई शास्त्रसम्मत राग ठहर सके। डॉ. आशा किशोर ने हिन्दी के वर्तमान गीतिकाव्य को लोकगीतों का ही विकसित और साहित्यिक रूप कहा है 'लोकगीत एक मौखिक अभिव्यक्ति है तथा परम्परागत होने के कारण इसमें परिवर्तन भी होते रहते हैं। वस्तुतः लोकगीतों का साहित्यिक रूप गीतिकाव्य के रूप में प्रकट हुआ है।'

हिन्दी का आधुनिक काल भी लोक–साहित्य से उतना ही अनुप्राणित हुआ है जितना प्राचीन काल। भारतेन्दु के समय से ही हमारे आनुनिक साहित्य का झुकाव लोककाव्य की ओर चला आ रहा है। भारतेन्दु की लोकप्रियता के प्रमुख कारणों में सर्वाधिक महत्वपूर्ण कारण उनकी लोकपरक दृष्टि थी जिसके द्वारा उन्होंनं एक शुद्ध काव्य परंपरा का श्रीगणेश था। भारतेन्दु ने देश की उन्नति के लिए स्पष्ट शबें में देश की जन–चेतना को जातीय साहित्य द्वारा जागृत करने की बात कही थी। "भारतवर्ष की उन्नति के लिए जो अनेक उपाय महात्यागण सोच रहे हैं, उनमें एक और उपाय भी होने की आवश्यकता है। इस विषय के बड़े–बड़े लेख और काव्य प्रकाशित होते हैं, किन्तु वे जनसाधारण के दृष्टिगोचर नहीं होते। इसके हेतु मैंने यह सोचा है कि जातीय संगीत की छोटी–छोटी पुस्तकें बनें और वे सारे देश गांव–गांव में साधारण लोगों में प्रकाश की जांच" लोकगीत, लोकभाषा और लोककाव्य की रचना की ओर झुका भारतेन्दु काव्य उनकी सामाजिक यथार्थपरक अनुभूतियों का प्रत्यक्ष उदाहरण है। भारतेन्दु ही नहीं उनके युग के अन्य सहयोगी कवियों में भी लोककाव्य की ओर झुकाव दिखाई पड़ता है। भारतेन्दु युगीन साहित्य का सबसे टिकाऊ और सजीव हिस्सा वह है जो पुराने रूपों में सामयिकता नयी विषय–वस्तु भर रहा था और नयी साम्राज्य विरोधी चेतना के अनुसार साहित्य के नये रूप भी गढ़ रहा था। गांव में गाये जाने वाले फाग, आल्हा सोहर, कबीरा आदि में इन कवियों ने देश की वर्तमान दशा को उरेहा, साथ ही परतंत्रता की बेड़ियों को काट मुक्ति की कामना भी की। कर्ज लेकर भी त्यौहार मनाने की परम्परा पर कवि ने आक्षेप किया।

"जुरिआए फाँके, मस्त होली होय रही।
घर में भूंजी भाँग नहीं है, तो भी न हिम्मत परस्त
हाली होय रही।
महंगी परी न पानी बरवा, बजरौ नहीं सरत
धन सब गवाँ, अकल नहीं आई, तौ भी मंगल
करत
होती होय रहीं।"

इसी तरह उनके सहयोगी कवि 'प्रेमघन' ने होली के अवसर पर 'कबीर' गाया

"कबीर झर र र र र र र र हाँ
होरी हिन्दुन के घर भरि–भरि धावत रंग
सबके ऊपर नावत, गारी गावत, पीए गंग
भला–भले भँगै बेधरमी मुंह मोरे।"

भारतेन्दु के बाद द्विवेदीयुग के कवि इस लोक–चेतना के वाहक बने। राम और कृष्ण जैसे भक्ति युग के नायक यहां 'नारायण' से 'नर' की

भूमि पर उतर आये और लोक'उद्धारक के रूप में चित्रित हुए। इन्होंने भी भाव को लोक–जीवन से लिए ही, आल्हा, बारहमासे, लोरी, सोहर आदि लोकगीतों के विभिन्न रूपों को भी कविता के लिए अपनाया। मैथिली शरण गुप्त की काव्यकृति 'यशोधरा' में राहुल को सुलाने के क्रम में यशोधरा द्वारा गाया गया गीत 'लोरी' ही है

"सो अपने चंचलपर, सो।
सो, मेरे अंधल धन, सो।
पुष्कर सोता है निज सर में,
भ्रमर सो रहा है पुष्कर में,
गुंजन सोया कभी भ्रमर में,
सो, मेरे गृह–गुंजन सो।
सो, मेरे अंचल धन सो।"

'वैदेही वनवास' में हरिऔद्य ने भी लोक–विधि के अंतर्गत लव–कुश के नामकरण संस्कार को बड़े धूमधाम से संपन्न होते दिखाता है

"ब्रम्हचारियों का दल उसमें बैठकर
मधुर कंठ से वेद ध्वनि है कर रहा
तपस्विनी सब दिव्य गान हैं गा रही
जनमानस में विनोद है भर रहा"

छायावादी काव्य में भी बहुत हद तक इस परम्परा का निर्वाह दिखाई पड़ता है। अपनी अभिजात दृष्टि से सम्पन्न छायावादी कवियों ने लोक–जीवन के प्रति विशेष उत्साह नहीं दिखाया लेकिन इस युग का गीत वितान बहुत अर्थों में लोक कंठों से अनुरंजित है। महादेवी के गीत लोककंठ का सहारा पाकर बड़ी ही कलात्मकता के साथ टूटे हुए 'करूण विहाग' के स्वर में फूट पड़े तथ पथ रहने दो अपरिचित, प्राण रहने दो अकेला 'या' मैं नीर भरी दुख की बदली जैसे गीत अपनी वेदनानुभूति में लोकतत्तव के परिष्कृत संस्करण के रूप में ही आए। कबीर ने बहुत पहले 'राम मोरा पीव', मैं राम की बहुरिया' 'या' 'अब मोरे गवने का दिन नगचाना'' कहरक लोक प्रचलित आत्मा और परमात्मा के सम्बन्ध में बताया था उसी प्रकार महादेवी भी ''प्रिय चिरंतन'' है, 'सजनि क्षण–क्षण नवीन सुहागिनी मैं'' कहकर जीवन और ब्रह्म के ऐक्य को प्रतिपादित करती हैं। प्रिय और प्रियतम के एक हो जाने पर समस्या आ खड़ी होती है संदेश भेजने की।

'प्रिय मुझी में खो गया, अब दूत को किस देश भेजूं
अलि कहां संदेश भेजूं
मैं किसे संदेश भेजूं

सब ओर से हार, निराला भी अपने आपको सर्वशक्तिमान् के चरणों में निवेदित कर देते हैं –

''डोलती है नाव, प्रखर है धार,
संभालो जीवन–खेवन हार।
तिर तिर, फिर फिर
प्रबल तरंगों में घिरती है,
टूट गयी पतावर
जीवन खेवन हार।''

साथ ही लोक जीवन में अपने मन को स्खलन से बचाने की प्रार्थना भी करते हैं

''दलित जन पर करो करूणा।
दीनता पर उत्तर आए प्रभु, तुम्हारी शक्ति अरूणा।
देख वैभव न हो नत सिर, समुदृत–मन सदा हो स्थित।
पाकर जीवन निरंतर, रहे बहती भक्ति करूणा।

यही लोक चेतना माखन लाल चतुर्वेदी, बाल कृष्ण शर्मा नवीन आदि छायावाद के अंतिम चरण के कवियों में भी दिखायी पड़ती है। माखन लाल चतुर्वेदी के 'तुम न हुए घर मेरे' या 'बदरिया थम–थम कर झर री' जैसे गीत लोकतत्तव को संदर्भित करने के ही प्रयास थे।

छायावाद के साहित्यिक प्रकर्ष के बाद बच्चन की कविताओं ने ये लोकतत्व काफी निखारा अपनी कविताओं के द्वारा इन्होंने काव्य को एक सहज काव्य शिल्प, भाषा की सरलता और अभिव्यक्ति की सादगी दी। इसी क्रम में दिनकर का भी नाम आता है। ''हुंकार के अनवरत संघर्ष से दुखे हुए गले को राहत देने के लिए दिनकर का गीतकार रसवन्ती में कभी विवाह का गीत गुनगुना रहा था, कभी किसी ग्राम प्रिया को आमंचित्र करने के जिए आल्हा की पंक्तियां गुनगुना रहा था, जिसे सुनती हुई प्रिया नीम की छाया में खड़ी भीतर–ही–भीतर उफन रही थी।''

इस प्रकार कवियों की लोकचेतना विकास प्राप्त करती रही और परवर्ती हिन्दी काव्य को अपनी प्राणवत्ता से जीवन्त बनाती रही।

प्रतिवाद, प्रयोगवाद, नई कविता की प्रमुख प्रवृत्तियों में कवि की यह लोक चेतना दर्शनीय है।

साहित्यिक कविता और लोककाव्य का अन्तर्सम्बन्ध पीछे के पृष्ठों में स्पष्ट हो चुका है। कविता चाहे जिस युग की रही हो 'लोक' से पूरी तरह विमुख नहीं हो पायी है। युग की मानसिकता या विषय के अनुरूप कवि की लोक चेतना अल्प या अधिक मात्राओं में अभिव्यक्ति पाती रही है। प्रगतिवादी काव्य चूंकि जीवन का काव्य था, सामाजिक सुख–दुख, हर्ष, विषाद आदि इस कविता के प्रमुख अवयव थे। अतः इस कविता में लोकतत्व स्वाभविक रूप से अपनी समग्रता के साथ आये। लोकगीतों की उदात्तता, सामाजिकता, सहजता, सरसता, मार्मिकता आदि से प्रभावित यह काव्य छायावादी साहित्यिक धारा से काफी अलग जा पड़ा। कवि जन जीवन के प्रति काफी उत्साही और लोक की सच्ची अनुभूतियों से काफी अलग जा पड़ा। कवि जन जीवन के प्रति काफी उत्साही और लोक की सच्ची अनुभूतियों से जुड़कर काव्य में आये।

प्रगतिवादी धारा के करीब–करीब सभी प्रमुख कवियों, केदारनाथ अग्रवाल, त्रिलोचन, शिवमंगल सिंह 'सुमन' नागार्जुन आदि की कविताओं में लोक काव्य और साहित्यिक कविता का परस्परान्वयन बड़ा ही प्रभावपूर्ण बन पड़ा है। बालकृष्ण शर्मा 'नवीन' तो लोकभाषा और लोकतत्तवों से गुंथा 'मछली–मछली कितना पानीजरा बाता दो आज' (1925) जैसे। गीत तब लिखा था जब हिन्दी में छायावादी कविताओं की धूम मची थी। प्रगतिवाद में 'आज सुना है कि सखी हमारे साजन लेंगे जोग री' या 'डोला लिये चलो तुम झटपट' जैसे इनके गीतों का आधार बहुत कुछ लोकजीवन और लोककाव्य ही है।

''डोला लिए चलो तुम झटपट

छोड़ो अटपट चाल रे।

सजन भवन पहुंचा दो हमको

मन का हाल बिहाल रे।

बरखा ऋतु में सब सहेलियाँ मैके पहुंची आय रे।

बाबुल घर से आज चली हम,

पिय घर लाज बिहाय रे

उनके बिन बरसाती रातें कैसे कटें अचूम रे ?

वर्षा की ऋतु उछाह और उमंगों की ऋतु है। वर्षा के आते ही बारहमासे और कजली की धूम मच जाती है, ग्राम बालाएं कजली गाने और झूला झूलने को ससुराल से मायके आ जाती हैं। ऐसे में प्रिय विभुक्ता–नायिका सारे लोक लाज को छोड़ बाबुल के घर से साजन के घर जा रही है।

इस आशा में कि कहीं उसका परदेशी वापस न आया हो। लोकजीवन पर आधारित प्रस्तुत गीत के भावों का अतिरेक, मिलन की उत्कंठा मन को सहज ही आकृष्ट करने वाली है। यही नहीं मिलन की गोपन माधुरी की सलज्ज अभिव्यक्ति 'के साथ' काम के ज्वाल में पिघलते तन की व्यथा को भी बड़े ही मार्मिक ढंग से प्रस्तुत किया गया है यहां –

''धीरे उठाओ मेरी पालकी

मैं हूँ सुहागिन गोपाल की

गेला है, फूलों के माल की

धीरे उठाओ मेरी पालकी

मैं हूँ सुरतिया गोपाल की

बेला है मानसिज के ज्वाल की।

दूर से आता बंशी का स्वर संयम के बांध को तोड़ देता है प्रिय मिलन का हेतु प्रिय को आकुल बना डालता है।

मांझी न बताओ बंशी मेरा मन डोलता

मेरा मन डोलता जैसे जल डोलता

जल का जहाज जैसे पल–पल डोलता

.....

मेरा तन झूमता है, तेरा मन झूमता

मेरा तन तेरा तन एक बन झूमता

मेरा तन तेरा तन, एक बन झूमता

लोक गीतों की उष्मा से भरपूर ये गीत जनमानस को विभोर कर देने की शक्ति रखते हैं। यहां न सिद्धन्तों की गूंज सुनायी पड़ती है न किसी सहत्र सूत्र की व्याख्या ही देखने को मिलती है। कवि केदारनाथ अग्रवाल ने तो स्पष्ट रूप से कह दिया था ''मेरे गीत लोक मानव के गीत हैं। न वे गायकी के गीत हैं न साहित्यिक उपलब्धियों के गीत हैं।

नरेन्द्र शर्मा के गीत भी लोकगीतों की बगल से होकर गुजरत हैं।

''माघ गया फागुन ढिग आया आजा, पास बटोही आन

गांव में बिलम न जाना, ओ बालम/निर्मोही मन पर भार

विरह का जैसे दिये पर कजरौटा एक वर्ष के बाद बटोही

फागुन बनकर लौटा सूखे पत्ते धूल उड़ाता,

दौड़ रहा फगनौटा।

लय और छन्द ो कवि ने लोक काव्य से लिये ही लोक के प्रतीक और उपमाओं को अपनाकर कवि ने कविता को जीवन के बिल्कुल समीप लाके रख दिया। मन पर विरह के भार को दर्शाने के लिए 'दिये पर बजरौटे' का प्रस्तुतीकरण कथ्य को मार्मिक के साथ–साथ सारगर्भित बना जाता है। इसी तरह 'मिट्टी और फूल' में संकलित कवि की 'हिरना–हिरनी' शीर्षक कविता भी पूरी तरह लोक–कथात्मक है।

प्रयोगवाद ने कविता को नई भावभूमि के साथ–साथ नये शैल्पिक चमत्कार भी प्रदान किये थे जिनमें कवियों द्वारा नये सन्दर्भों में लोकतत्वों का अपनाया जाना भी एक महत्वपूर्ण बात थी। इन कवियों की दृष्टि अनुसंधित्सु की दृष्टि थी। इन्होंने लोक के उन सन्दर्भों या उन संवेदनाओं को अपने प्रयोग की कसौटी पर रखा जो परम्परा द्वारा त्याग दिये गये थे अथवा अब तक त्याज्य समझे जाते रहे थे। बड़े उत्साह से कवियों ने ऐसे सन्दर्भों को साहित्यिकता का गौरव दे काव्य में प्रतिष्ठित किया। प्रयोगवाद से पहले प्रतिवाद में

यह लोक–चेतना काफी खुल कर अभिव्यक्त हुई थी लेकिन वहां कवि परम्परा से मुक्त नहीं हो पाये थे। ग्रामीण अनुभूतियां ग्राम्य जीवन, ग्राम परिवेश, वहां के शोषण संघर्ष आदि ही कवि को उलझा रहे। फलतः उनके काव्य में वह नयापन नहीं आया जो प्रयोगवादियों के काव्य में उभरा। प्रयोगवादियों ने पुराने 'कॉन्टेन्ट' को भी नये ढंग से बदले हुए 'फॉर्म' में रखा –

''रख दिये तुमने नज़र में बादलों को साधकर,

आज

माथे पर, सरल संगीत से निर्मित अधर धर,

आरती के

दीपकों की झिलमिलाती छाँह में बाँसुरी रखी हुई

ज्यों भागवन के पृष्ठ पर।

प्रयोगशील कवियों में रामविलास शर्मा, भावनी प्रसाद मिश्र, धर्मवीर भारती, नरेश कुमार मेहता, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, मदन वात्स्यायन, प्रभाकर माचवे आदि में लोकतत्त्वों की ओर विशिष्ट ज्ञान के दर्शन होते हैं। इनकी कविताएं लोककाव्य की लोक सरलता, लोक भाषात्मकता, लोक प्रत्रीक लोक संगीत आदि से काफी प्रभावित हैं। ग्रामलय, वार्तात्मक लोक तुक, ग्राम धुनों आदि के इन कवियों ने साहित्यिक कविता में अच्छे प्रयोग किये हैं।

प्रचलित समवेत् गान की पद्धति पर रचित राम विलास शर्मा की निम्नलिखित कविता एक ऐसा उदाहरण –

'हाथी घोड़ा पालकी

जै कन्हैया लाल की

निश्चय वियी होंगे हम

गिरने दो जापानी बम

बोलो बंदे मातरम्

भारती ने लोक प्रचलित अमर प्रतीकों को आश्रय दे कविता को जन सामान्य के लिए सुलभ बना दिया

''हम बोएंगे हरी चुनरिया, कजरी मेंहदी

राखी के कुछ सूत और सावन की पहली तीज।

'चुनरी' और 'मेंहदी' लोक जीवन में सदा से श्रृंगार के अमी प्रतीक रहे हैं, 'राखी' भाई बहन के पवित्र प्रेम का तथा 'तीज' भारतीय सुहागिनों की साधना का पुनीत पर्व रहा है। कविता में लोक प्रचलित इन प्रतीकों का प्रयोग कर कवि ने अपनी साहित्यिक कविता को लोककाव्य के निकट ला खड़ा किया। अज्ञेय की कविताओं में भी ये लोक–प्रतीक बड़े स्पष्ट रूप में सामने आए हैं।

''भोर की बेला छंटती को रोंदकर

हारिल उड़ा था जो।

.....

''काँखन–काँखन–काँखन

घनेरे नास जास

मुंह से निकले हैं यही मेरे

सच मुंह–अंधेरे

सबेरे–सबेरे

'हारिल' या 'काँच–काँच' शब्द हमारे लोकजीवन से ही लिए गये हैं। हारिल पक्षी या हारिल की लकड़ी हमारे लोकजीवन की वस्तुएं हैं। कौवे की 'काँय–काँय' मनहूसियत या आनेवाली विपत्ति का सूचक है.....कविता में इनका प्रयोग कवि के लोकजीवन से जुड़े होने का साक्ष्य प्रस्तुत करता है। प्रतीक ही क्यों कवियों ने लोकगीतों की पद्धति पर भी कविताएं लिखीं, जिनके प्रत्येक

छन्द में लोकरस के छींटे भरे मिलते हैं। अज्ञेय की 'काँगड़े की छोरियों', 'वसंत गीत', 'ये मेघ साहिसक साहसिक सैलानी', 'शाली', 'पानी बरसा, 'माघ–फागुन–चैत' आदि कविताओं का आधार लोकगीत ही हैं।

''काँगड़े की छोरियाँ

कुछ भोलियाँ, सब गोरियाँ

लाला जी जेवर बनवा दो

खाली करो तिजोरियाँ''।

हास्य और श्रृंगार का अद्भुत मेल मिलता है इस कविता में। लय के साथ–साथ कवि ने कथ्य को भी लोककाव्य की तरह अत्यन्त सरल रूप में व्यक्त किया है। 'पानी बरसा' में वर्षा की प्रथम फुहार प्रिया के मन–प्राणों को भिंगो डालती है, सारी धरती हुलास उठती है, मिलने के सौ–सौ अभिलाष जाग उठते हैं।

''ओ पिया पानी बरसा

ओ पिया पानी बरसा

घास हरी झूमर सी

झूमी मधुमालती

झर पड़े पीत अमलतास

चातकी की वेदना विरानी।''

वातावरण के चित्रण में भी कहीं–कहीं इन कवियों ने लोकतत्वों का सहारा लिया है।

''फिसली–सी पगडण्डी, खिसली आँख लजीजी री,

इन्द्र–धनुषरंग–रंगी, आज में सहज रंगीली री

रुनझुन बिछिया

आज, हिला–डुल मेरी बेनी री, ऊंचे–ऊंचे पेंग, हिंडोला

सरग–नसेनी री,.....पी के फूटे आज प्यार के, पानी बरसा री।''

लोकगीतों में 'री' से गीतों के अन्त का प्रचलन प्रसिद्ध है। भवानी प्रसाद मिश्र की उपर्युक्त कविता में 'री' का प्रयोग उसके लोकगीत भावित बना देता है। ''भारती का 'गोरा', गोरी सौंधी धरती, कारे–कारे बीज, बदरा पानी दे।'' या 'डोले का गीत' भी लोककाव्य की विशेषताओं से युक्त है।

कवि केदारनाथ सिंह को 'धानों का गीत' 'वसंग गीत', 'फागुन गीत', विदागीत आदि गीत पूरी तरह कवि की लोकगंधी चेतना तया नये अंदात को व्यक्त करते हैं।

''पपीहा–दिन

आ गये ?

फिर

पपीहा–दिन आ गये

.....बाँसुरी अपनी लुका रखे

छिपा रखे

बिन छुद

पगली अचानक

पिडक उठेगी।''

य

''पथराये तारों की जोत

डबडबा गयी,

मन की अनवाही सभी

आँखों में छा गयी,

सुना क्या न तुमने, यह दिल जो धड़का किया।''

लोकगीत भावित ये साहित्यिक गीत लोकगीत की किसी कड़ी–से प्रतीत होते हैं। उदाहरण के लिए मदन वात्स्यायन का यह गीत भी लिया जा सकता है।

''गोरी मोरी गेहुंअन साँप मदुर–घेरो

गोरी मोरी गेहुंअन साँप।''

य

''दूज की चाँद ये आयी, आयी गोरी रे याद तेरी

यह गंग मूल बसे, खू पटना, दौड़ी–दौड़ी आयी जोन्हियारू''।

हिन्दी कविता की वह धारा जिसे सन् ''1950 के आस–पास हमने नयी कविता की संज्ञा प्रदान की थी, शहरी बौद्धिकता एवं औद्योगिक पूंजीतंत्र की उपज होते हुए भी काफी हद तक लोककाव्य और लोक–संदर्भ से जुड़ी रही। या ऐसा भी कहा जा सकता है कि लोकजीवन का रस और लोक साहित्य की स्वीकृति लेकर, यह कविता अपने को शुष्क तथा नीरस होने से बचाये रही, क्योंकि युगीन संत्रास, घुटन, बिखराव आदि की स्थितियों ने कविता को अतिशय बौद्धिकता, वैचारिक दशाओं, मनोसंसार की गुत्थियों, जिज्ञासाओं आदि को पूरी तरह उलझा के छोड़ दिया था, कविता हृदय से दूर मस्तिष्क की चीज होती जा रही थी, ऐसे में नगर जीवन की एकरसता को तोड़ने तथा भावों को अधिक सवेद्य तथा संप्रेष्य बनाने के हेतु लोकतत्व एक आवश्सक आवश्यकता बनके आए जिनके द्वारा कविता को नयातथा व्यापक अर्थ संदर्भ मिला।

यह ठीक है कि स्वतंत्राता के बाद साहित्य में उभरे विभिन्न आन्दोलों के फलस्वरूप उपन्यास, कहानी आदि में आंचलिकता का स्वी विशेष तेजी से उभरा था या ऊंचा उठा था। कविता में यह स्वी मद्धिम ही रहा था, फिर भी स्वातंत्रोत्तीर काव्य में आयी जन चेतना की लहर, ग्राम्य शब्दों के प्रति कवियों का खिंचाव, लोकलय तथा लोकधुनों का साहित्यिक कविता में धड़ल्ले से प्रयोग आदि नये कवि की लोक गंधी चेतना के ही परिचायक हैं। अगर हम ध्यानसे देखें तो अतिशय बौद्धिकता या दुरूहता के पक्षधर कवियों में भी अधिकांश के मन में लोकजीवन के प्रति एक ललक या लोक में अपने भावों की सच्ची पहचान पाने की छटपटाहट सी पायेंगे। ऊपर से ये कवि भले ही डर रहे थे कि लोकजीवन की स्वीकृति कहीं उनकी कविता को शहरी रूचि में पुरानी या फीकी न बना दे या उसके अभिजातीय ढाँचे में विकर्षण न पैदा कर दे लेकिन अन्दर–ही–अन्दर 'लोक' की विशालता और व्यापकता से भी परिचित थे। अतः ये 'लोक' से विलग नहीं हो पाये, बल्कि लोकतत्वों के संस्पर्श से इन्होनें कथ्य तथा शिल्प को, प्रयोगवाद से कुछ और आगे बढ़कर एक नई भूमि प्रदान की।

लोकगीतों के सरल छन्दों का हिन्दी की गई कविता पर काफी प्रभाव पड़ा है। विचारों की अधिकता के कारण नये कवि की भाषा गद्यात्मक जरूर हो गई है, लेकिन वहां भी इसके भाषा में लयात्मकता है जो कविता का सौंदर्य है। इस प्रकार लोकगीतों के सरल छन्दों को अपनाकर कवि ने जीवन के सहज बोधों को अभिव्यक्ति दी। विषय के अनुकूल छन्दों को नया संस्कार दे काव्य में एक नवीन सौन्दर्य की सुष्टि की।

''घाट के रस्ते

उस बसंवट से

इस पीली सी चिड़िया

कुछ अच्छा सा नाम है

मुझे पुकारे

ताना मारे

भर आए आँखड़ियाँ

उन्मन फागुन की शाम है।''

लोकधुनों औश्र ग्रामधुनों को इन नये कवियों ने बड़ी ही कलात्मकता के साथ काव्य के सांचे में ढाला, जिससे इनके गीतों में 'लोकगीतों की सहजता और सौन्दर्य दोनों आ यगे।'' लोक संवेदना और लोकानुभूमिति से जुड़े ये गीत जीवन के बिल्कुल निकट आ खड़े हुए

''ऊंच महल पर सोना–साना

नीच झोपड़ियां बनी मसाना

सुलग–सुलग धुआँ के संग

घुट–धुट जागा मन चंगा

हर गंगा

हर गंगा''

प्रस्तुत गीत में लोक प्रचलित प्रतीकों के माध्सम से, जीवन के वैषम्य और सांस्कृतिक उद्बोधन को, गांव–गांव घूमकर साधुओं द्वारा एकतारा पर गाये जाने वाले गीत को लोक प्रचलित धुन पर, अभिव्यक्त किया गया है।

इसी तरह 'भरा समन्दर गोपीचन्दर' शीर्षक कविता में गांव में खेले जाने वाले एक खेल के गीत की पंक्तियों को ज्यों–का–त्यों उतार दिया गया है साथ ही स्वतंत्रता के बाद की धीमी प्रगति को भी बड़े ही प्रतीकात्मक ढंग से प्रस्तुत किया गया है।

''भरा समन्दर गोपीचन्दर

बोल मेरी मछली कित्ता पानी?

इत्ता पानी

केंचुए की गति से चल चलकर

नये धान की हरि रोशनी

पड़ गयी फीकी

सांस–सांस हो गई पुरानी।''

लोककाव्य से बहुत कुछ लिया इन कवियों ने। संगीत की गति, नृत्य की मुद्राएं, भावों की यति आदि बहुत से तत्व लोककाव्य से नहीं कविता में आए।

''कास के फूल आकास के तारे

धरती के माथे की छवि उजियारे

जगमग–जगमग जागे जुन्हाई

शरद् रितु आई।''

प्रस्तुत पंक्तियों में व्यक्त संगीत, नृत्य की थाप और मुद्राएं सब–के–सब लोकगीतों पर आधारित सी जान पड़ती हैं। कविता को एक ''साहित्यिक हच'' भर मिला लगता है यहां। इसी तरह लोकगीतों की लय पर रचा नामवर सिंह का यह गीत मन में अनायास ही किसी की 'सुध' को लगा जाता है।

''उनए उनए भादरे

बरखा की जल चादरें

फूल दीप से जलें

कि झरती पुरवैया की याद रे

मन कुंए के कोहरे सा

रवि डूबे के बादरे।''

लोकभाषा के साथ–साथ 'रे' का संगीतात्मक महत्व पाठक या श्रोता के मन को छू जाता है।

नई कविता प्रमुख हस्ताक्षर सर्वेश्वर तो पूरी तरह लोक चेतना के वाहक बनकर आते हैं। लोक की एक–एक धड़कन, एक–एक सांस इनकी कविताओं में स्पष्ट रूप से सुनी जा सकती है। लोक–संस्कृति से युक्त उनकी कविताओं के माध्यम से यह अच्छी तरह समझा जा सकता है कि सर्वेश्वर ने गई कविता के लिए वह किया को आधुनिक खड़ी बोली काव्य के आरंभिक युग में मैथिलीशरण ने किया था। तद्भावता, सार्वजनीनता और व्यापकता उनके कृतित्व के मूल गुण हैं। चरवाहों का युगल गाने में पुरुष और नारी स्वरों के संवाद के माध्यम से कवि ने स्वरों ग्राम्य परिवेश की रोमानी जिन्दगी को तो प्रस्तुत किया ही है, साथ–साथ गांव में गाये जाने वाले युगल गान की परम्परा को भी प्रश्रय दिया है।

''पुरूष स्वर नदिया किनारे, हरी–हरी घास

जाओ मत, जाओ मत

नारी स्वर नदि किनारे सोने की खात

छुओ मत, छुओ मत

बड़ी बुरी बात

बिछिया, झूमर, मुंदरी तरकी

लाओ, कहां धरे हो।''

गीत के शब्द–शब्द में पुरुष का आग्रह और नारी का प्रेमाश्रित निषेध भरा पड़ा है।

नया कवि इस बात से भिज्ञ है कि वर्तमान काल संक्रान्ति का युग है। नित नूतन मान्यताएं बन रही हैं और बिगड़ रही हैं। मान्यताओं और परम्पराओं का नया इतिहास बन रहा है। ऐसे में प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं को दृष्टि में रखते हुए भविष्य के लिए एक राह की खोज कवि के लिए आवश्यक हो जाती है।

इस प्रकार नयी कविता से झांकते हुए लोकत्तव इस बात की पुष्टि करते हैं कि हम पुनः उधर ही लौट रहे हैं जिसे हमने कभी अपनी परिष्कृत नागरिक रूचि में त्याज्य समझा था। आधुनिकता में आंचलिकता का समावेश होता चला जा रहा है। आधुनिक जीवन की कुंठाओं, कृत्रिमताओं, परेशानियों आदि के प्रतीक स्वरूप लोकजीवन के तत्वों का प्रयोग कवि को प्राचीन और नवीन के संधि–स्थल पर ला खड़ा करता हैं जहां से एक नई किरण फूटतीदिखायी दे रही है।

नवगीतों में आचंलिकता की एक विशेष प्रवृत्ति दिखायी पड़ती है, जिससे ऐसा लगता है मानो गीत अपनी खोयी हुई ताज़गी और सहज आवेग को पुनः प्राप्त करने के लिए लोकगीतों की ओर झुके हों। आंचलिकता के इस संस्पर्श ने गीतों में लोकजीवन की अनगिनत भावमय छवियां प्रस्तुत की हैं, साथ ही गीतों को अभिव्यंजना की गई ताजगी तथा जीवन्तता भी दी है। लोकजीवन के सहज सौन्दर्य और सथार्थ के खुरदरे एहसासों से जुड़े ये गीत एक नयी भावभूमि पर रचे गये हैं। जिनके मूल में स्वातंत्रयोत्तर मोह भंग की स्थितियां तथा उनसे उत्पन्न रिक्तता की भावनाएं हैं। स्वतंत्रता के पूर्व से ही भारतीय मन सौंदर्य के नये तलाश रहा था, साथ ही यथार्थ का तीखापन भी काव्य में जगह पाने को बेचैन था। स्वतंत्रता के बाद लोकमन की यह बेचैनी और भी तीव्र हो उठी और वह अपनी अस्मिता की पहचान के लिए ललक उठा। इन्हीं स्थितियों में नये गीत कवि अपने मन की रिक्तता को भरने के लिए प्राचीन संदर्भों, लोकजीवन, लोकसौन्दर्य आदि की आरे मुड़े। नया कविता की ही तरह नवगीतों में भी लोकतत्व एक रुझान बनकर आया। लोकगीतों की टेक, लोक के प्रतीक, लोक का अप्रस्तुत विधान, लोक भाषा की शब्दावली, लोकधुन,

लोकलय आदि काफी मात्रा में नवगीतकारों द्वारा गये।

नई कविता के समर्थ कवि केदारनाथ सिंह एक विशिष्ट नवगीतकार के रूप में उभरते हैं। लोक–संवेदना, लोक का वस्तुबोध तथा लोकभाषा की मिठास के साथ–साथ लोकधुनों की कर्णप्रियता लिये इनके साहित्यिक गीत लोकविश्वासों से युक्त, चेतना के विभिन्न स्तरों के स्फुरण हैं।

''धान उगेंगे कि प्राण उगेंगे

उगेंगे हमारे खेत में

आना जी बादल जरूरचंदा को बांधरेरो कच्ची कलंगियों

सूरज को सूखी रेत में

आना जी बादल जरूर।''

कवि बादल का आह्वान इसलिए करता है कि फसल के उगने की संभावना दृढ़ है। लोकगीतों के माध्यम से प्रायः सामूहिक सुख–दुख की अभिव्यक्ति होती रही हे। नये गीत कवियों ने भी उनके आधार पर युग के यथार्थ का संवहन करने वाले गीतों की रचना की। लोक गीतों के रचना–शिल्प का एक अभिजात प्रयोग रामदरश मिश्र की निम्नलिखित रचना में देखा जा सकता है।

''संध्या को लौटे मेले से

जैसे राही हारे

छप–छप–छप गांवों की पगडंडी

मुंह–धो उठीं खेत की गलियां

ताजे कंठों की कजली धु

झम–झम झींसी गोर बिलियां।''

प्रचलित भोजपुरी लोक गीत 'निमिया की डाल मइया डालेगी हिलोरवा'' के आधार पर रचा शंभुनाथ सिंह का यह गीत निस्तब्ध रात्रि के उन गहन क्षणों में पहुंचा देता है जहां हवा का हल्का सा प्रकम्पन भी अव्यक्त की पुकार को साकार बनाता, मन प्राणों को सिंहरा जाता है।

''बजता है ढोल कहीं, पूजा के बोल

नवरी का चाँद बुझा

हवा उठी जाग

तैरता अंधेरे पर

मिल–जुला राग

गीत के हिंडोलों पर राम रही डोल

नीम का हिंडोला ओ

मालिन का द्वार

एक बंद की प्यारी, माँ रही पुकार

यह पुकार नींद के किवाड़ रही खोल।''

लोक गीतों के अनेक छन्द नवगीतकारों द्वारा अपनाए गये

''निंदिया सातवे मोहे संझ ही से सजनी

संझ ही से सजनी

निंदिया सातवे मोहे

प्रेम बतकही

तनकहू नभ्यावे

संझ हीं से सजनी

निंदिया.....

छलिया रैन कजर ढरकावै''

य

''मधु बरसे, हुन बरसे

बरसे स्वति धार

आँगन पार

सावन की उन हार''

एक ही बात को कहने के विभिन्न ढंग मालू थे हमारे लोककवियों को या किसी बात पर बल डालने के लिए बार–बार लयात्मक ढंग से उसे कहना लोक कवियों की विशेषता है। हिन्दी के इन गीतकारों ने भी अपने कथ्य को प्रभावपूर्ण बनाने के लिए लोक–प्रचलित इस पद्धति का सहारा लिया जो इनके साहित्यिक गीतों में एक चमत्कार बन के आया। जीवन और समाज से चुने गये अलंकरण इनकी रचना को और भी प्रभावी बना गये।

''कहीं फूला है पूजा का फूल

गंध उड़ आयी है।

गमक गूंजती गली–गली में

सब रस है उस कुन्द कली में

धायल हुई है पुरवाई

गंध उड़ आई है

भौंरे की बरजूं तो मन नहीं माने

मन नहीं माने औ सौ हठ ठाने ''

इधर की नई पीढ़ी के गीतकारों में रमेश रंजक, नईम, ओम प्रभाकर, उमाकान्त, मसलवीय, माहेश्वर तिवारी, कैलाश गौतम आदि में लोककाव्य के प्रति गहरा लगाव दिखायी पड़ता है।

प्रणय के सन्दभों में इनकी लोकचेतना काफी मार्मिक हो उठी है। गीतकार अपनी प्रिय को 'थोड़ी और' प्रतीक्षा करने को कहता है।

''देखे रहना ज्योति

दिये को जीवित रखना रे

रात रजनीगंधा से सहना

चुप–चुप रहना रे

एक दुष्टि रतनार प्रतीक्षा और

प्रिय....! बस एक दृष्टि रतनार।''

कहीं–कहीं भक्तिकालीन पद शैली से भी गीतकार प्रभावित हुए हैं

जैसे

''जादूगर की आज तुम्हारी

मेरी विद्या तुमसे हारी।

बिना दाम ही नाम तुम्हारे

मैं बिक बैठी हुं बनवारी।''

इसी तरह कहीं – कहीं गीतकार की प्रिय का दर्द, रीतिकालीन बोध को छूता हुआ, मादक–मंदिर मौसम में, प्रिय से अलग हर एक प्रिय का दर्द ब जाता है।

'' कैसे मन की करू चिरौरी

खाली–खाली बाखर पौरी

ऐसे मौसम तुम बाहर हो

आँगन टपके पकी निबौरी।''

इस प्रकार ये गीत हमें पुनः अपने राष्ट्र अरौ अंचल से जोड़ते हुए वहां ले जाते हैं जहां से हमने चलना शुरू किया था।

नवगीतों में आंचलिकता की इस प्रवृत्ति का कुछ लोगों ने विरोध भी किया। उनके नअुसार आज बदलाव की प्रक्रिया में गांव भी बहुत कुछ बदल गये हैं, ऐसी स्थिति में 'गंवई' भाषा के प्रयोग मात्र से कोई गीत नवगीत नहीं हो जाता। लेकिन हिन्दी के सब नवगीतों पर यह बात लागू नहीं होती। कुछ ही गीत ऐसे होंगे जहां कवि ने इस तरह के प्रयोग किये होंगे। अधिकांश गीत लोकतत्वों को सही अथों और सही संदर्भों में ग्रहण किये हुए हैं। कला गीत सदा से ही लोक गीतों से प्रेरणा, शक्ति, ताज़गी और दिशा प्राप्त करते रहे हैं। हिन्दी के नवगीतकारों ने भी गीत को रूढ़ियों से मुक्ति दिलाने के लिए ऐसाकिया और काफी हद तक उन्हें सफलता भी मिली।

संदर्भ

1. डॉ. हजारी प्रसाद द्विवेदी : 'लोक–साहित्य का अध्ययन' जनपद–पत्रिका, अक्टूर 1952
2. लक्ष्मी नारायण सुधांसु, जीवन के तत्व और काव्य के सिद्धान्त।
3. डॉ. आशा किशा : आयुनिक हिन्दी गीति काव्य का स्परूव और विकास।
4. मई 1879 ई. की 'कवि वचन सुध' में प्रकाशित भारतेन्दु की विज्ञप्ति का अंश।
5. भारतेन्दु हरिश्चन्द्र, भरतेन्दु ग्रंथवली।
6. कवि किशोरी लाल गुप्त से) : प्रेमधन 5 वसंत बिन्दु, (भारतेन्दु और उनके सहयोगी
7. मैथिली शरण गुप्त : यशोधरा (साहित्य सदन झाँसी)
8. हरिऔध : वैदही वनवास, द्वादस सर्ग।
9. महादेवी : संध्यगीत
10. महादेवी : दीपशिखा
11. निराला : 'परिमल'
12. चन्द्रदेव सिंह, पाँ जोड़ बाँसुरी, संपादकीय
13. बाल कृष्ण शर्मा 'नवीन', क्वींल
14. केदारनाथ अग्रवाल : फूल नहीं रंग बोलते हैं।
15. नरेन्द्र श्र्मा : प्यासा निर्झर
16. डॉ. आर.पी. वर्मा : छायावादोत्तर हिन्दी कविता में एक अंशीलन
17. राम चन्द्र शुक्ल : हिन्दी साहित्य का इतिहास
18. 18. डॉ. आर.पी. वर्मा : आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रमुख कवि